International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 02-09-2025, Accepted: 01-10-2025, Published: 16-10-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 24-26

उपभोक्तावादी संस्कृति और भारतीय जीवन

डॉ. पवन कुमार बालानिया
अतिथि असिसटेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़, चूरू, राजस्थान, भारत

सारांश
भूमण्डलीकरण के दौर में पूँजीवाद के प्रभाव में फँसे उपभोक्तावादी बाजारीकरण के कारण भारतीय समाज के मायने बदल रहे हैं। इस समय अनेकानेक संकटों से जूझते समाज की संरचना जटिल होती जा रही है। आधुनिक युग में उपभोक्तावादी संस्कृति एक वैश्विक प्रवृत्ति के रूप में उभरकर सामने आई है। इसका मूल आधार व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा, पहचान, भौतिकता, सम्पन्नता आदि हैं। इस नई शब्ताब्दी में जब पूरा विश्व नई करवट ले रहा है और हर पल उसका प्रभाव भारतीय जीवन पर पड़ रहा है। भारतीयों को मान्यताएँ, परम्पराएँ और जीवन–मूल्यों में निरन्तर परिवर्तन आ रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण मानवीय सरोकारों के साथ–साथ संवेदनाएँ भी बदल गई हैं। भारतीय जीवन में जो परिवर्तन आ रहे हैं, वे एक नए युग की शुरुआत मानी जा सकती है। आज भारतीय जीवन एक नई विश्व–संरचना में दिखाई पड़ रहा है। भारतीय समाज जो परम्परागत रूप से सादगी, संयम, संतोष और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित रहा है, वो अब तीव्र गति से उपभोक्तावादी संस्कृत्ति की ओर अग्रसर हो रहा है। बाजारीकरण, उदारीकरण और तकनीकि विकास ने इस प्रवृत्ति को ओर अधिक बल प्रदान किया है। पाश्चात्य जीवन–शैली का प्रभाव भारतीयों की दैनिक जीवनचर्या में समाहित हो गया है। इस शोध–पत्र में भारतीय जीवन पर उपभोक्तावादी संस्कृत्ति के प्रभावों का बहु–आयामी विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि उपभोक्तावादी संस्कृति ने जहाँ जीवन स्तर को सुधारा है, वहीं इसने भारतीय जीवन के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी है। शोध के अंत में भारतीय समाज के लिए संतुलित जीवन–शैली की दिशा में मार्गदर्शन एवं संभावनाओं को प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्दः उपभोक्तवादी, संस्कृत्ति, भारतीय जीवन, भूमण्डलीकरण, स्त्री–पुरूष, बाजारवादी, उपयोग, सतत विकास, भौतिकतावादी, उदारीकरण।

प्रस्तावना
वर्तमान में हम इक्कीसवीं शती के आरम्भिक दौर में जी रहे हैं। इस समय अपने चारों तरफ एक नई दुनिया का विस्तार पा रहे हैं। ये नया दौर भूमण्डलीकरण का है। आज पूरा विश्व एक ग्लोबल गाँव में बदल चुका है। इसे उपभोक्तावादी संस्कृति के रूप में पहचान मिली है। इसका असर भारतीय जीवन पर भी पड़ा है। भारतीय लोग भी पाश्चात्य चकाचौंध में घिर चुके हैं। उपभोक्तावाद केवल एक आर्थिक सिद्धान्त नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति है। इसमें व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी कमाई, उपभोग क्षमता, भौतिक साधन और जीवन–शैली के आधार पर किया जाता है। पश्चिमी देशों में आई औधोगिक क्रांति के बाद उपभोक्तावादी संस्कृति ने गहरी जड़े जमाई है। भारत जैसे विकासशील देश में यह प्रवृति सन् 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद तीव्रगति से उभरी है। उदारीकरण ने भारतीयों की सभ्यता और संस्कृति को ही बदल दिया। जिससे समाज और धर्म की अवधारणा ही बदल गई। इसने विचारधारा, राजनीति और इतिहास को प्रभावित किया है। भारतीय लोग अपने आप को अपार सुख–सुविधाओं से घिरा पा रहे हैं वहीं उनके अंतस में एक खालीपन है, जिसकी अंदर की बेचैनी और अप्राप्ति निरन्तर बदलती जा रही है। अतीत और भविष्य का भंवरजाल वर्तमान को खाए जा रहा है। जबकि भारतीय समाज जीवन की परम्परागत प्रवृत्ति में संतोष, सादगी, मानवता और आध्यात्मिकता का समर्थन रहा है। परिवार, समाज और धर्म व्यक्ति के उपभोग व्यवहार को नियत्रिंत करते थें। लेकिन वैश्वीकरण, मीडिया और टेक्नोलॉजी ने एक नई उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया। जिसके फलस्वरूप दिखावा, प्रतिस्पर्धा, भौतिकता और सामाजिक प्रतिष्ठा ही मानक बन गए हैं। लेकिन सोचने की बात है कि यह भविष्य जो लगातार हमें आगे बढ़े चले जाने की जिद कर रहा है, आखिर हमें वो कहाँ ले जाना चाहता है ? आधुनिकता के इस दौर में भारतीय जीवन को पूरी तरह लपेट लिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण भारतीय मनुष्य चेतन–शून्य होता जा रहा है। जिसके परिणाम शोषण, बलात्कार, जघन्य हत्या, रिश्तों में खटास के रूप में देखा जा सकता है। अतः भारतीयों को एक बार पुनः अपने अतीत को झांककर देखना होगा।

शोध विस्तार
उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय जीवन को कई रूपों में प्रभावित किया है, जैसे – सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन, आध्यात्मिक जीवन, आर्थिक जीवन आदि। भूमण्डलीकरण की आँधी ने मनुष्य की सोच विचार, रहन–सहन, भाषा और जीवन शैली को प्रभावित किया है। भारतीय लोग उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रति सचेत नहीं है जैसा कि फ्रेडरिक जेमसन ने अपनी पुस्तक 'आक्रियोलोजीन ऑफ फ्यूचर' में लिखा है – ''उपभोक्ता समाज की उस शक्ति का प्रतिरोध करने वाला यथार्थवाद होना चाहिए जो मनुष्य और उसकी पूरी दुनिया को वस्तुओं में बदल देती है। उपभोक्ता समाज में यह शक्ति होती है कि वह मनुष्य के शारीरिक और मानसिक श्रम को उत्पन्न तमाम चीजों के साथ–साथ मनुष्य के विचारों, भावनाओं तथा सम्पूर्ण जड़ और चेतन जगत से उसके संबंधों को भी बेची और खरीदी जाने वाली चीजें बना दे''।[1] उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय समाज की संयुक्त–परिवार प्रणाली को तहस–नहस कर दिया है। नए दौर में एकल परिवारों की तादाद बढ़ रही है। जहाँ पर उपभोग के निर्णय व्यक्तिगत स्तर पर लिए जाते हैं। पारिवारिक असंतुलन के कारण भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, अराजतकता, अव्यवस्था, अनाचार, वैमनस्य, घृणा, द्वेष, अनैतिकता, श्रम–शषोषण, भ्रूण–हत्या, आत्महत्या, मानसिक कुंठा, क्रोध, अहंकार, स्वार्थ, नारी अपमान, परपीड़ा, अलगाववाद आदि घटनाओं को बढावा मिला है।

उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण भारतीय समाज में दिखावे की संस्कृति का चलन हो चुका है। जिसके परिणामस्वरूप विवाह, त्योहार, धार्मिक और सामाजिक आयोजन में प्रतिस्पर्धा का चलन हो गया है। युवा–पीढ़ी भी षिक्षा, कैरियर और सामाजिक संबंधों में आधुनिक जीवन–शैली को अपना रहे हैं। उपभोक्ता संस्कृति के इस दौर में साषल मीडिया प्रमुख आकर्षण का केन्द्र है। जैसे :– ''आधुनिक तकनीक ने सही रूप में हमें 'ग्लोबलविलेज बना दिया है। इसने संसार के तौर तरीके बदल दिए हैं। सेटेलाईट टेलीविजन पुरानी बात हो गई है। डिजिटल तकनीकी पत्रकार और दर्षक के बीच की दूरी कम कर देगी। मोबाईल, टेलीविजन, इस्टेंट वीडियों में उपयोग की वस्तु बना देंगे। नई ऑनलाईन तकनीक अब वीडियो ऑन डिमाण्ड का प्रस्ताव दे रही है।''[2]

उपभोक्तावादी संस्कृति का भारतीय सांस्कृतिक जीवन पर भी प्रभाव लक्षित होता है। गाँव की परम्परागत संस्कृति लुप्त हो रही है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति फैल रही है। मानव जीवन के आध्यात्मिक मूल्य भी धूमिल हो रहे हैं। परम्परागत समाज में स्त्री–पुरूष के बीच सम्बन्ध केवल पति–पत्नी का रहा है। विवाह एक धार्मिक कार्य माना जाता था। परन्तु बाजारवादी व्यवस्था ने स्त्री–पुरूष सम्बन्धों में प्रबल उबाल ला दिया है। आज के युवक–युवतियाँ परिवार व समाज की परवाह किए बिना 'लिव इन रिलेषन' में जी रहे है। सोषल मीडिया पर पुरूष कम स्त्रियाँ अधिक अपने शरीर की नुमाईष करती मिलेंगी। वहीं विज्ञापन जगत तो स्त्रियों के बिना अधूरा ही है। सिनेमा ने भी भारतीयों के जीवन में आमूल–चूल परिवर्तन किया। सेलेब्रिटी चाहे स्त्री हो या पुरूष 'फ्लाईंग किस' आम बात हो गई है। ''स्त्री–पुरूष सम्बन्धों में आए इस परिवर्तन से बेनाम सम्बन्ध विकसित होते जा रहे हैं। ये स्त्री–पुरूष सिर्फ अपनी यौन सन्तुष्टि के लिए एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करते है, वास्तव में इनके बीच किसी भी तरह का कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं होता है।''[3] भारत की लोक संस्कृति भी उपभोक्तावादी संस्कृति के गिरफ्त में है। आज देश के पारंपरिक लोकगीत, कला और रीति–रिवाज बाजारवादी संस्कृति के दबाव में आकर हाषिए पर जा रहे हैं। योग, ध्यान, सत्संग, प्रार्थना व अन्य धार्मिक आयोजनों का भी व्यवसायिकरण हो गया है। बाबा रामदेव का योग–व्यापार व स्वदेशी की आड़ में बढ़ता जा रहा है। इतना ही नहीं अनेक साधु–संत भी सनातन के नाम पर फुहड़ता पेश कर रहे है। बाजारीकरण की प्रवृत्ति से धर्म भी धंधा बनता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने अर्थ नीति को भी प्रभावित किया है। जिसे भारतीय जीवन को तबाह कर दिया है। हजारों किसानों, दलितों, गरीबों ओर बेरोजगार नौजवानों के जीवन में निराषा भर दी है। डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का कहना हैः– ''वस्तुतः जिस समय में हम जी रहे हैं, वह समय संवेदनषील रचनाकार और आम आदमी दोनों के लिए कठिन एवं चुनौतीपूर्ण है। नई सदी में प्रवेश करने के साथ ही हम इस कठिनाई की ओर गम्भीरतापूर्वक देखने लगे हैं और चुनौतियों की व्याख्या करते हुए उनसे लड़ने के औजारों के विषय में भी सोचने लगे हैं।''[4] उपभोक्तावादी संस्कृति के चलन के समय भारतीय जीवन में संतुलन की आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति का मूल दर्षन 'संतोष' और 'अपरिग्रह' पर आधारित रहा है। महात्मा गाँधी ने 'सादगीपूर्ण जीवन और उच्च विचार' का आदर्ष प्रस्तुत किया था। उपभोक्तावादी जीवन शैली में भारतीय मध्यम वर्ग अपनी वास्तविक कामनाओं, लालसा और शोहरत में जीना चाहता है। मध्यमवर्ग की इस अजीब दास्तान को लेखक पवन कुमार वर्मा ने रेखांकित किया है ''भारतीय राज्य ने पिछले सालों में कई उपलब्धियाँ अर्जित की है। लेकिन इसके मध्य तथा अभिजात वर्गों में वैचारिक बंजरपन इस कदर बढ चुका है कि वे तो अषक्त हो ही गए है, यह धरती उनकी अनैतिक और संवेदन शून्य कामनाओं के बोझ से दब जाने के खतरे से ग्रस्त हो गई है।''[5] इसलिए आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि भारतीय समाज उपभोग और मूल्यों के बीच संतुलन बनाए। भारत की सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान, दर्षन, साहित्य और सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत उपभोक्तावादी संस्कृति के निषाने पर है। भारतीय वर्तमान षिक्षा विचार–प्रधान, चिन्तन, प्रधान एवं मूल्यप्रधान की अपेक्षा ज्ञानार्जन प्रधान है। हालांकि नई षिक्षा नीति 2020 में षिक्षा को समग्र लचीला और कौषल आधारित बनाया गया है। इसमें भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति पर बल दिया है साथ ही ऑनलाईन और डिजिटल षिक्षा को महत्त्व दिया है। इससे जरूर भारतीय सांस्कृतिक विरासत को समर्थन मिलेगा।

उपभोक्तावाद के सकारात्मक पक्ष के रूप में मनुष्य जीवन स्तर में सुधार और आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता हुई है। रोजगार और नए उद्योगों का विकास हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार और तकनीक की पहुँच हुई है। महिलाओं और युवाओं के लिए नए अवसर आए है। परन्तु इसके नकारात्मक पक्ष भी है। असमानता और उपयोग में विभाजन हुआ है। पर्यावरण प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। भारतीय जीवन में मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा और अवसाद बढ़ा है। पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। दिखावे की संस्कृति, भोगवाद और नैतिक पतन भी देखने को मिला है। श्री जीवन सिंह लिखते हैं :– ''बाजारवाद का सबसे खतरनाक खेल है– इन्सानी अनुभूतियों का पूरी तरह हनन कर व्यक्ति को मशीन में परिवर्तित कर देना। आज चारों तरफ मषीनी मनुष्यों के चेहरे नजर आते है जिनके ऊपर मानवीय अनुभूतियों की चमक गायब है।''[6] उपभोक्तवादी अर्थ व्यवस्था ने व्यक्ति व्यवहार में भी परिवर्तन किया है। महानगरों में ही नहीं सुदूर गाँवों में भी व्यक्ति सोच में परिवर्तन आया है। उनकी रीति–नीति, लोकाधार, आस्था एवं विश्वास में वैश्विक चेतना को देखा जा सकता है :– ''अंकल–आंटी संबोधन सुषिक्षितों, षिक्षितों, अशिक्षतों, नगरों, कस्बों, गाँवों, कोठियों, बंगलों, झोंपड़ियों और झुग्गियों में आज समान रूप से पहुँच गया है।''[7] भारतीय समाज में आए बदलाव को इस प्रकार देखा जा सकता हैः– ''वर्तमान भारत में विपरित प्रकार के सामाजिक मूल्य और सामाजिक अभिवृत्तियाँ पाई जाती हैं। आज व्यक्ति समूह, समाज और देष के हित के दृष्टिकोण से विचार नहीं करके स्वयं के हित के दृष्टिकोण से सोचता है। तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों के साथ व्यक्ति समायोजन नहीं कर पा रहा है। उसके सम्मुख लक्ष्य और साधनों की अस्पष्टता है।''[8]

निष्कर्ष

उपभोक्तवादी संस्कृति भारतीय जीवन पर गहरा प्रभाव डाल रही है। इसने जहाँ एक तरफ सुविधाएँ, रोजगार और आधुनिक जीवन–शैली दी है, वहीं सामाजिक असमानता, पर्यावरण संकट, भाषा–भाव, मानवीय तथा नैतिक मूल्यों के ह्रास की समस्याएँ उत्पन्न कर दी है। भारत जैसे विकासषील देश के लिए चुनौती यह है कि वह परम्परागत मूल्यों और आधुनिक भौतिक प्रवृत्तियों के बीच संतुलन स्थापित कैसे करें? अति भौतिकतावादी जीवन शैली के कारण सेक्स–स्केण्डल, सेक्स–रैकेट, गैंगरेप, ऑन लाईन गैम, भिन्न–भिन्न तरह के स्कैम, फ्रॉड आम बात हो गई। आज देश के बौद्धिक वर्ग, राजनेता व अन्य जिम्मेदार संस्थाओं को भारतीय जीवन के बारे में पुनर्विचार करना होगा। उपभोक्तावादी चुनौती से निपटने के लिए एक बार फिर नवजागरण की आवश्यकता है, जो युवक–युवतियों में आत्म–सम्मान और दायित्व की भावना को जागृत करें। भारतीय जीवन संतुलित उपभोग और सतत विकास के बल एक बार पुनः सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार को प्राप्त कर भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. नागदा, माढवा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी लघुकथाएँ : चिंताएँ और चुनौतियाँ (आलेख) मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, अक्टूबर–नवम्बर, 2014, पृ. 40
2. सरदेशाई, राजदीप : भारतः कल, आज और कल (लेख) अहा जिन्दगी (पत्रिका) दैनिक भास्कर समूह भोपाल (मध्य प्रदेष) 2007, पृ. 66
3. गोदावत, डॉ. रक्षाः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्त्री पुरूष–संबंधों के संदर्भ में दिनेश पालीवाल की रचनाएँ (आलेख) मधुमतीः राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, फरवरी, 2018, पृ. 137
4. उपाध्याय डॉ. कौशलनाथः कविता का पक्ष, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2008, पृ. 11
5. वर्मा पवन कुमार : भारत के मध्य वर्ग की अजीम दास्तान (पुस्तक) पृ. 16 पल्लवः कथाकार स्वयं प्रकाश की रचनाशीलता और भारतीय समाज (आलेख) मधुमतीः राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, जून, 2016, पृ. 47
6. सिंह, जीवनःवागर्थ (मासिक पत्रिका) आलेख, भारतीय भाषा परिषद, कोलकात्ता, अप्रेल, 2016, पृ. 14
7. शर्मा डॉ. ब्रजस्वरूपःवैश्वोकरणोन्मुखी सामाजिकता में साहित्य निहित सांस्कृतिक चेतना (आलेख) मधुमतीः राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, मार्च, 2016, पृ. 38
8. गुप्ता प्रो. एम. एल. व शर्मा डॉ. डी. डी.ः भारतीय मुददें तथा समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेषन, आगरा, 2005, पृ. 359